वंदे मातरम्

खेतिहर मजदूर - समस्या तथा निराकरण

लेखक–

मा० ग० डोंगरे

महामंत्री, अ० भा० खेतिहर मजदूर महासंघ

सम्बद्ध

भारतीय मजदूर संघ

ग्रामीण क्षेत्र की समाज रचना

भारत की आजादी के बाद सरकार द्वारा ग्रामीण-जीवन विकास के लिए यद्यपि अनेक घोषणायें की गई हैं। उदाहरणार्थ 'रामराज', कल्याणकारी सहकारी राज', 'समाजवादी रचना', 'गरीबी हटाओ' किन्तु इन सब क्रान्तिकारी नारों के बावजूद गरीब और गरीब होता गया है। गरीबों की संख्या में बराबर वृद्धि हुई है, जो अति दुर्भाग्य पूर्ण है। वर्ष १९७१ की गणनानुसार यह संख्या ४७.४८ मिलियन थी, जो देश की सम्पूर्ण मजदूर संख्या का २६% थी। सरकारी आकड़ों से भी यह बात स्पष्ट है कि वर्ष १९५१ से १९७१ के बीच गरीबी की मात्रा में काफी वृद्धि हुई है।

विश्व में जहां कहीं भी गरीबी बढ़ी है वहां के समृद्धि सागर में गरीबी ने दावानल का काम किया है। भारत में दरिद्र रेखा के नीचे जीवन व्यतीत करने वाले ४० करोड़ लोग हैं, जिसमें ग्रामीण मजदूरों की मात्रा अधिक है। इसलिये भारत की समृद्धि के लिये कोई भी विकास योजना बनाते समय भूमिहीन एवं अल्प भूधारक खेति-हर मजदूरों का विचार करना आवश्यक है।

यह बात सही है कि इधर कुछ वर्षों से भारत की समाज रचना में कुछ बदल अवश्य हुआ है। जिसमें अस्पृश्यता निवारण एवं वधुआ मजदूर पद्धति की समाप्ति के संकल्प उल्लेखनीय हैं। यह बात सही है कि भारत के संविधान के सम्मुख सभी समान हैं। समानता का वातावरण निर्माण करने में प्रौढ़ मतदान पद्धति व समय समय पर होने वाले चुनाव से जातीयता के तीव्र बन्धन कुछ शिथिल हुए हैं।

नये प्रतिष्ठित वर्ग का उदय

वर्ष १९५० में जमीदारी प्रथा समाप्त हो जाने से जमीदारों की रियाया अब खेती की मालिक बनी है। भूमि सीमा निर्धारण से भी बड़े जमीदार समाप्त हुए हैं। जलसिंचन योजना में करोड़ों रुपयों के व्यय के कारण कुछ मात्रा में हरित क्रान्ति अवश्य हुई है। इस कारण ऐसे लोग, जो व्यापार की दृष्टि से खेती करने वाले हैं नये जमीदार के रूप में उभर कर आये हैं। ग्रामीण क्षत्रों में ऐसे लोगों का स्थान अब ऊचा हुआ है। स्वयं खेती न करने वाले पुराने जमीदारों का स्थान अब इन लोगों ने लिया है।

मध्यम वर्गीय किसान

कुछ ऐसे किसान हैं, जो अपने खेतों पर या तो स्वयं काम करते हैं अथवा अपने ही कुटुम्ब के लोगों से काम करवाते हैं। ऐसे लोग मध्यम वर्गीय किसान कहलाते हैं। प्रायः ये लोग वरिष्ठ जाति के होते हैं। ऐसे मध्यम वर्गीय साधारण किसानों को जमीन सुधार कानून तथा जमीदारी उन्मूलन विधान के कारण काफी लाभ हुआ है।

भूमिहीन छोटे किसान

ग्रामीण किसानों में भमिहीन छोटे किसानों की संख्या अधिक है। इनकी आर्थिक दशा दयनीय है। कुल कायदा एवं भू सुधार नियम के भय से जमीदारों ने अपने पुराने कुलों (Tenant) को भगा दिया है और स्वयं खेती करने लगे हैं। बड़े जमीदारों द्वारा की जा रही इस प्रकार की कार्यवाही पर रोक लगाने के लिये वर्ष १९५१ से १९७१ तक जो भी कानून बने हैं वे अपर्याप्त और अपूर्ण हैं। इसके लिये मर्यादित भूमि कानून (सीलिंग) भी अप्रभावी रहा है। कारण कि जैसे जैसे सरकार ने कानून बनाये वैसे वैसे अधिक भूमि स्वामियों ने नया रास्ता निकाल लिया है। इसलिये भूमिहीनों के लिये बहुत थोड़ी जमीन उपलब्ध हुई है। जैसे जैसे जनसंख्या में वृद्धि हुई है। जमीन के टुकड़े हुए हैं। परिणाम स्वरूप अति छोटे किसानों की संख्या में वृद्धि हुई है।

ग्रामीण गरीबों में भूमिहीन खेतिहर मजदूरों की स्थिति अधिक खराब है। देश के अन्य प्रान्तों की तुलना में केरल और पंजाब तथा हरियाणा में खेतिहर मजदूरों की स्थिति कुछ ठीक है। किन्तु जांच-पड़ताल से पता चला है कि चावल उपजाने में अग्रणी समझा जाने वाला केरल के अलोप्पी जिले के कुट्टनाड में खेतिहर मजदूरों की हालत शोचनीय है। उनकी आय बहुत कम है, जिसके कारण उनके रहन सहन का स्तर भी काफी नीचा है। वर्ष १९७४-७५ में हुयी 'केरल लेबर इन्क्वायरी' से यह बात स्पष्ट हो गयी है कि वर्ष १९६४-६५ से वर्ष १९७४-७५ के कालखण्ड में ग्रामीण पुरुषों का असली वेतन १२% बढ़ा है किन्तु बेकारी बढ़ी है। साथ ही पुरुष तथा महिला कामगारों की मजदूरी का औसत प्रतिशत घट गया है। डा० राजकृष्ण ने भी यह बात स्वीकार की है कि इस अवधि में बेकारी बढ़ी है। बेकारी एवं कम वेतन प्रतिशत के कारण ग्रामीण क्षेत्र में विशेषत: खेतिहर मजदूरों में गरीबी ने भीषण रूप धारण कर लिया है।

उपरोक्त विवेचन से यह बात स्पष्ट हो गई है कि विगत ३० वर्षों से ग्रामीण क्षेत्र में ३ वर्गों का उदय हुआ है प्रथम ग्रामीण श्रीमंत अथवा प्रतिष्ठित लोग, जिसमें अधिकांश उच्च वर्ग के लोग रहते हैं। इनमें वे लोग हैं, जो पहले के जमींदार, साहूकार एवं व्यापारी हैं और अब नये काश्तकार के रूप में उभर कर सामने आये हैं। दूसरे मध्यम वर्गीय किसान हैं, जो स्वयं खेती करते हैं अथवा साझेदार के रूप में काम करने वाले हैं। मध्यम वर्गीय किसानों में बहुधा वरिष्ठ वर्ग के लोग आते हैं। तीसरे ग्रामीण गरीब जो बटाई पर काम करते हैं। इनमें प्राय: खेतिहर मजदूर, छोटे साझेदार एवं सुनार, लोहार आदि सम्मिलित हैं। तीसरे वर्ग में पिछड़ी हुई जाति तथा बनवासी एवं आदि वासी आते हैं। ऐसे लोग खेत में साझीदार अथवा खेतिहर होते हैं, जिनका शोषण वरिष्ठ धनवान किसान करते हैं।

यद्यपि ग्रामीण अमीर सिकानों की संख्या बहुत कम है किन्तु

स्थानीय संस्था एवं सरकार पर इनका काफी प्रभाव होता है। मध्यम वर्ग के किसानों की संख्या अधिक है, जिनका प्रभाव ग्रामीण विभाग में तेजी से बढ़ रहा है। इस प्रकार दोनों को जमीन विकास एवं सुधार से अधिक लाभ हुआ है तथा इन्होंने ग्रामीण क्षेत्रों में अपना प्रभाव भी कायम रखा है।

तीसरा वर्ग अच्छी स्थिति में नहीं है। वर्ष १९७१-७२ में दो हेक्टर से कम खेती करने वालों की संख्या लगभग २६ मिलियन थी और भूमिहीन ग्रामीण परिवारों की सख्या २२ मिलियन थी। दोनों मिलकर ४८ मिलियन तीसरे वर्ग में आते हैं। कुल ग्रामीण परिवारों की संख्या ८७ मिलियन है। देश में छोटे किसानों तथा भूमिहीन ग्रामीण परिवारों की संख्या सम्पूर्ण ग्रामीण परिवारों की संख्या का ५५% है।

●

ग्रामीण तथा खेतिहर मजदूरों की वर्तमान स्थिति

भारत की ८०% जनता देहात में रहती है। गत ३० वर्षों से अपने देश में औद्योगीकरण पर प्रधानता दी जा रही है। फिर भी बहु-संख्य लोगों का व्यवसाय खेती है। यही कारण है कि मजदूरों की संख्या बहुत कम है। वर्ष १९७१ की जनगणना के अनुसार भारत में खेतिहर मजदूरों की संख्या लगभग ४७-४८ मिलियन थी। वर्ष १९७४-७५ के सर्वेक्षण के अनुसार कुल ग्रामीण परिवारों की ८६ प्रतिशत स० ग्रामीण मजदूरों की थी, जो निरन्तर बढ़ती जा रही है। निम्नांकित आँकड़ों से यह बात स्पष्ट हो जायेगी :—

खेतो में काम करने वालों की संख्या		कुल कामगार संख्या
वर्ष १९६१ में	१३७.८ मिलियन	१९०.०९ मिलियन
वर्ष १९७१ में	१६७.८० मिलियन	२३०.४८ मिलियन
वर्ष १९७८ में	१९७.४७ मिलियन	२६१.२९ मिलियन

लाख एकड़ जमीन भूमिहीन मजदूरों में वितरित की गई है। भूमि सुधार कानून का क्रियान्वयन कितनी मन्द गति से हो रहा है यह इस बात से स्पष्ट हो रहा है।

गरीबी एवं आर्थिक विषमता में वृद्धि

भारत के ग्रामीण क्षेत्र में गरीबी एवं असमानता निरन्तर बढ़ रही है। गिने चुने लोगों के हाथ में सम्पत्ति का केन्द्रीकरण होता जा रहा है। आय एवं उसके बटवारे में भी काफी अन्तर है। जबकि पंचवर्षीय योजना का लक्ष्य आर्थिक समृद्धि में सामाजिक न्याय दिलाना था। किन्तु गत तीस वर्षों में योजनाओं से, जो भी लाभ हुआ वह ६ करोड़ खेतिहर मजदूरों तक पहुंचा ही नहीं है। इतना ही नहीं तो ४ करोड़ कास्तकार भी इस लाभ से बंचित रह गये हैं।

सरकारी जानकारी के अनुसार भी देश में ४० करोड़ लोग दरिद्र रेखा के नीचे जीवन यापन कर रहे हैं। 'नेशनल सेम्पल सर्वे' के अनुसार १९६० में गरीबों की सख्या १७२ मिलियन थी। वर्ष १९६४-६५ में २४५ मिलियन, १९७३-७४ में २६४ मिलियन तथा १९७८ में दरिद्र रेखा के नीचे जीवन यापन करने वालों की सख्या २९० मिलियन थी। तात्पर्य यह है कि प्रतिवर्ष अनुमानत: ५० लाख लोगों का प्रवेश गरीबी की परिधि में हो रहा है। इसके रहन सहन का स्तर भी नीचा है तथा रहने का ठिकाना भी नहीं हैं। चिकित्सा, शिक्षा, पौष्टक अहार के अभाव में बाल मृत्यु ऐसी समस्याओं के कारण गरीबों के जीवन में दिन प्रतिदिन निराशा छा रही है।

भीषण आर्थिक विषमता

रिजर्व बैंक के अनुसार आर्थिक विषमता निरन्तर बढ़ रही है। कुल ग्रामीण आय के साधनों (Assets) में से ८० प्रतिशत उच्च श्रेणी के ३०% लोगों के हाथ में है। बिल्कुल निचले दर्जे के ३० प्रतिशत लोगों के पास कुल ग्रामीण सम्पत्ति का २ प्रतिशत है।

लाख एकड़ जमीन भूमिहीन मजदूरों में वितरित की गई है। भूमि सुधार कानून का क्रियान्वयन कितनी मन्द गति से हो रहा है यह इस बात से स्पष्ट हो रहा है।

गरीबी एवं आर्थिक विषमता में वृद्धि

भारत के ग्रामीण क्षेत्र में गरीबी एवं असमानता निरन्तर बढ़ रही है। गिने चुने लोगों के हाथ में सम्पत्ति का केन्द्रीकरण होता जा रहा है। आय एवं उसके बटवारे में भी काफी अन्तर है। जबकि पंचवर्षीय योजना का लक्ष्य आर्थिक समृद्धि में सामाजिक न्याय दिलाना था। किन्तु गत तीस वर्षों में योजनाओं से, जो भी लाभ हुआ वह ६ करोड़ खेतिहर मजदूरों तक पहुंचा ही नहीं है। इतना ही नहीं तो ४ करोड़ कास्तकार भी इस लाभ से बंचित रह गये हैं।

सरकारी जानकारी के अनुसार भी देश में ४० करोड़ लोग दरिद्र रेखा के नीचे जीवन यापन कर रहे हैं। 'नेशनल सेम्पल सर्वे' के अनुसार १९६० में गरीबों की सख्या १७२ मिलियन थी। वर्ष १९६४-६५ में २४५ मिलियन, १९७३-७४ में २६४ मिलियन तथा १९७८ में दरिद्र रेखा के नीचे जीवन यापन करने वालों की सख्या २९० मिलियन थी। तात्पर्य यह है कि प्रतिवर्ष अनुमानतः ५० लाख लोगों का प्रवेश गरीबी की परिधि में हो रहा है। इसके रहन सहन का स्तर भी नीचा है तथा रहन का ठिकाना भी नहीं हैं। चिकित्सा, शिक्षा, पौष्टक अहार के अभाव में बाल मृत्यु ऐसी समस्याओं के कारण गरीबों के जीवन में दिन प्रतिदिन निराशा छा रही है।

भीषण आर्थिक विषमता

रिजर्व बैंक के अनुसार आर्थिक विषमता निरन्तर बढ़ रही है। कुल ग्रामीण आय के साधनों (Assets) में से ८० प्रतिशत उच्च श्रेणी के ३०% लोगों के हाथ में है। बिल्कुल निचले दर्जे के ३० प्रतिशत लोगों के पास कुल ग्रामीण सम्पत्ति का २ प्रतिशत है।

खेती उपज साधनों के मालिक कौन ?

रिजर्व बैंक की जांच रिपोर्ट के अनुसार ग्रामीण विभाग में उपज साधनों के बटवारे में पर्याप्त विषमता है। १९६१–६२ में अति निम्न स्तर के १० प्रतिशत लोगों के पास २६ प्रतिशत उपज साधन थे किन्तु १९७१–७२ में २६ प्रतिशत से घटकर २० प्रतिशत ही रह गया है। अति उच्च स्तर के १० प्रतिशत अमीर किसान परिवारों के पास १९६१–६२ में उपज साधनों का ५८.७१ प्रतिशत था जो १९७१–७२ में बढ़कर ७१.७९ प्रतिशत हो गया। उच्च स्तरीय १० प्रतिशत अमीर किसानों का १ प्रतिशत अति उच्च स्तरीय किसान के हैं। जिनके पास उपज साधनों का इस एक दशक (१९६१–६२ से १९७१–७२) में २०.६१ से बढ़कर २२.१६ प्रतिशत तक वृद्धि हुई है।

कर्ज में फंसा ग्रामीण निर्धन मजदूर

उपज एवं खर्च उनकी विषमता के कारण खर्च की व्यवस्था करना गरीबों की अति कठिन समस्या बन गई है। अर्थात उपज एवं खर्च का तालमेल प्रस्थापित करने के लिए तथा जीवित रहने के लिये इन लोगों को कर्ज का सहारा लेना पड़ता है। उनकी इस असहाय अवस्था का अनुचित लाभ उठाने के लिये साहूकार हमेशा तैय्यार रहते हैं। अधिक ब्याज पर कर्ज लेने के लिये यह लोग मजबूर हो जाते हैं। साहूकारों को यह बात अच्छी तरह मालूम है कि गरीब मजदूर ऋण कभी भी लौटा नहीं सकता है। परिणाम स्वरूप मूल को कौन कहे ब्याज लौटाने में असमर्थ मजदूर की मजबूरी का लाभ उठाकर साहूकार ब्याज के बदले में मजदूर से बेगार कराता है।

वर्ष १९६४-६५ में कर्जदार ग्रामीण तथा खेतिहर मजदूर परिवार के प्रति मजदूर पर २४४ रुपया कर्ज था। जो १९७४-७५ में बढ़कर ५८४ रुपया हो गया।

खेतिहर मजदूरों पर कुछ परम्परागत कर्ज था। वर्ष १९६४-६५ की तुलना में वर्ष १९७४–७५ में यह दूना हो गया। इस प्रकार के कर्ज

का बोझ उत्तरी भारत के मजदूरों पर ज्यादा था। खेती के प्रगति की तुलना में कर्ज के रकम की मात्रा अधिक थी। इन कर्जों में वंश परम्परागत कर्ज ५ प्रतिशत से ६ प्रतिशत था। खेद का विषय है कि १९७४-७५ में यह कर्ज भी बढ़कर दूना हो गया। इस कारण खेतिहर मजदूरों का जीवन दूभर हो गया है।

सहकारी संस्थाओं एवं बैंकों का मत था कि खेतिहर मजदूर, जो कर्ज लेता है उसका अधिकांश वह अपने पेट भरने में खर्च कर डालता है। सर्वेक्षण से यह भी बात स्पष्ट हो गई कि बैंक या सहकारी संस्थाओं से लिये गये कर्ज का ५० प्रतिशत से भी ज्यादा उन्होंने खाने में खर्च किया। सच तो यह है कि उसने उत्पादन कार्यों पर खर्च कम किया। कर्ज लेकर वे खा डालेंगे के भय से सहकारी संस्थायें अथवा बैंक ने भी उन्हें कर्ज देने में उत्साह नही दिखाया है। निस्सन्देह मजदूर पहले से अधिक कर्जदार हुआ है। पिछले ३० वर्षों में ग्रामीण क्षेत्रों का कर्ज एवं उसकी वृद्धि निम्नांकित है।

'रूरल लेबर इन्क्वायरी' के अनुसार कर्ज नकद पैसे व अनाज दोनों रूप में होता है। कर्ज के कई प्रकार हैं– जैसे किसी वस्तु को उधार खरीदना, अपनी चीज को किसी के पास गिरवी रखना, अपनी चीज को सुरक्षित रखने की दृष्टि से किसी के पास रखना आदि। वर्ष १९६४–६५ में ग्रामीण मजदूर परिवारों में ६०.६ प्रतिशत लोग कर्ज के बोझ से दबे थे। १९७४-७५ में यह अंक ६६.४ प्रतिशत हो गया। बिहार, राजस्थान, पजाब हरियाना, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाड् तथा केरल प्रांतों में ७०% से भी अधिक कर्जदार थे। विशेषता यह है कि खेती में अधिक प्रगति करने वाले हरियाणा और पजाब के ७५ से ८०% लोग कर्ज के बोझ से दबे हैं। इनपर सहकारी संस्थाओं व बैंक आदि से मिलने वाले कर्ज का भार है साथ ही इनपर साहूकारों का भी कर्ज है। भूमिहीन मजदूर जिसके पास थोड़ी सी भी जमीन थी उन लोगों ने कर्ज लेकर अपना काम चलाया है। इस प्रकार के कर्जदारों का प्रतिशत

सम्पूर्ण भारत में ६२ से ७१ प्रतिशत है। ग्रामीण मजदूर संस्थाओं से मिलने वाला कर्ज नहीं के बराबर हैं। कारण कि साहूकार एवं जमीदार मात्र उन्हीं को कर्ज देते हैं जिनके पास थोड़ी बहुत जमीन या उनकी जमानत लेने वाला व्यक्ति होता है। जिनके पास न जमीन है और न ही जमानतगीर उन्हें कर्ज नहीं मिलता है।

वर्ष १९७४–७५ में पिछड़ी जाति के मजदूर परिवारों को कर्ज मिलने की ब्याज दर ७१ प्रतिशत थी जबकि इसके पूर्व १९६४–६५ में ६६ प्रतिशत थी। सहकारी संस्थाओं द्वारा कर्ज देने में उदासीनता वरतने के कारण इन खेतिहर मजदूरों को मजबूर होकर साहूकारों से निजी कर्ज लेना पड़ता है। १९७४-७५ में ग्रामीण परिवारों द्वारा निजी साहूकारों से लिये गये कर्ज का प्रतिशत ४८ था। वर्ष १९६४–६५ में इस प्रकार का कर्ज ३०.६ प्रतिशत था। सहकारी संस्थाओं से लिए हुए कर्ज का प्रतिशत प्रतिवर्ष १९६४–६५ में ५.१ प्रतिशत था जो बढ़कर १९७४–७५ में ५.३ प्रतिशत हो गया। सहकारी संस्थाओं द्वारा दिये गये कर्ज में वृद्धि अत्यल्प थी। लेकिन पिछड़ी जाति को इन सहकारी संस्थाओं ने मात्र ३.८ से ७.४% तक ही कर्ज दिया। इससे स्पष्ट है कि पिछड़ी जातियों को सहकारी ऋण दाताओं से भी कोई समुचित योगदान नहीं मिला।

ग्रामीण मजदूर परिवारों को सहकारी संस्थाओं से भी न्यायपूर्ण व्यवहार नहीं मिला। बैंकिंग तथा सहकारी आदि जगह गरीबों के विषय में कुछ चर्चा होती है तथा इनके लिए कुछ कार्य भी किया गया है। किन्तु वस्तु स्थिति यह है कि ग्रामीण क्षेत्र में आय का साधन मात्र खेती है जो अति खर्चीली है। सहकारी संस्थाओं का इसमें समुचित योगदान नहीं मिलता है। आश्चर्य की बात तो यह है कि सरकारी संस्थाओं से ऋण उन्हीं को मिलता है, जिसके पास भूमि है। भूमिहीनों को नाम-मात्र का कर्ज मिलता है।

वर्ष १९७१–७२ में रिजर्व बैंक के सर्वे के अनुसार २० हजार

रुपये से कम जमीन जिनके पास है ऐसे परिवारों का प्रतिशत कुल परिवारों का ८५ प्रतिशत था। इस समूह में से कुल खेती की ३३ प्रतिशत जमीनें थीं। इनको सहकारी संस्थाओं द्वारा दिये गये कर्ज का प्रतिशत भी ३३ ही था।

२० से ५० हजार रुपये मूल्य की जायदाद रखने वाले ग्रामीण परिवारों का प्रतिशत ११ था। कुल जमीन का उनके पास ३१.४ प्रतिशत जमीन थी। उल्लेखनीय बात यह है कि, इस समूह को भी कुल सहकारी कर्ज में से मात्र ३४.६ प्रतिशत ही कर्ज मिला।

५० हजार रुपये से ऊपर जिनकी जायदाद है तथा ग्रामीण क्षेत्रों में, जो धनी समझे जाते हैं ऐसे परिवारों का प्रतिशत ३.१ था जिनके पास ३५.२ प्रतिशत जमीन थी किन्तु कुल सहकारी कर्ज का ३१.४% कर्ज इन्हें भी मिला।

रिजर्व बैंक ने एक यह भी तथ्य प्रकट किया है कि देहात में जिन लोगों के पास ५०० रुपये से कम की जायदाद है ऐसे गरीब लोगों ने अपनी जायदाद का ८०% किसी न किसी के पास गिरवी रखा है। इसके विपरीत जिनके पास एक लाख रुपये की सम्पत्ति है वे अपनी सम्पत्ति का ३ प्रतिशत गिरवी रखे हुए हैं। खेतिहर मजदूरों में ५०० रुपये से कम सम्पत्ति वाले बहुसंख्य परिवार हैं। उनकी जायदाद का अधिकांश साहूकार के साथ गिरवी रहता है। इसी प्रकार देहात के कारीगर लुहार व सुनार जिन अवजारों के सहारे अपना काम करते हैं—मजबूरी में उसे भी गिरवी रखते हैं।

देश की सम्पूर्ण आबादी का ५०.९ प्रतिशत लोग गरीबी की रेखा के नीचे हैं। ऐसे ३० करोड़ लोग गरीबी की रेखा के नीचे जीवन बसर कर रहे हैं। ऐसे लोगों की मासिक आय ४० रुपये है वर्ष १९७२ व १९७५ के मूल्य के अनुसार ३% से ज्यादा ग्रामीण लोगों की आय नित्य २ रुपये से भी कम है। १९७२–७३ में अति निम्न स्तर के लोगों के पास मात्र १ प्रतिशत सम्पति थी।

इसके विपरीत अति उच्च स्तर के लोगों के पास कुल ग्रामीण सम्पति का आधे से अधिक थी। निराश्रित एव बेकार लोगों की संख्या यदि छोड़ दी जाय तो भी ६५ से ७० प्रतिशत लोग कर्ज से दबे हुए हैं। इन पर कर्ज की मात्रा २५० रुपये से ५०० रु० तक है।

खेतिहर मजदूर तथा परिवारों का कर्ज १९६४–६५ से १९७४–७५ में १४८ से ३८७ रुपये बढ़ गया। इस कर्ज में ४८ प्रतिशत कर्ज साहूकारों से लिया होता है। जब कि १९६४–६५ में यह कर्ज ३१ प्रतिशत था। भारत के ८० प्रतिशत गावों में पेय जल की कमी है। कुल आबादी का १५ प्रतिशत लोगों को सार्वजनिक वैद्यकीय सहायता मिलती है। यदि ठीक प्रकार से चिन्ता न की गई तो इस शताब्दि के अन्त तक भारत में दो करोड़ लोग अन्ध रहेंगे।

१९३१ में ५ से १५ वर्ष आयु के बालकों में निरक्षरों की संख्या ८ करोड़ थी, जो १९७१ में ९ करोड़ ७ लाख हो गई। ग्रामीण विभाग में प्रति दो बच्चों के पीछे १ बच्चा पहली कक्षा से ही पाठशाला अथवा पढ़ना छोड़ देता है। स्त्रियों में ८९ प्रतिशत निरक्षर हैं।

बेकारी

बेकारों की संख्या २०.०५ मिलियन है। उसी प्रकार (१९७२-७३) के अनुसार मासिक ४० रुपये आय वाले ३० करोड़ लोग थे। खेतों पर काम न करने वाले नियमित मजदूर अथवा वेतन लेकर काम करने वालों की संख्या ४.६१ मिलियन थी। स्वयं के खेत पर अथवा अन्य काम करने वाले तथा काम के तलाश में भटकने वाले १५.२९ मिलियन तथा कभी–कभी बेकार अथवा काम के तलास में रहने वाले मजदूर ३२.६५ मिलियन थे।

अत्याचार,

ग्रामीणखेतिहर मजदूरों पर अत्याचार बढ़ ही रहा है। विशेषत: हरिजन तथा समाज के अन्य दुर्बल घटक पर होने वाले अत्याचार

का उल्लेख समाचार पत्रों में आये दिन आता है।

ग्रामीण विभाग में जमींदारों का वर्चस्व अभी भी शेष है। अधिकारी वर्ग से उनकी मिली भगत रहती है। बड़ी जाति के लोग छोटी जाति के लोगों को आतंकित करके दबाए रहते हैं। नियमतः वेतन मांगने, सरकार द्वारा प्रदान सुविधाओं की प्राप्ति के प्रयास पर उनके ऊपर अनेक अत्याचार होते हैं।

हरित क्रान्ति के बलि चढने वाला खेतिहर मजदूर

खेती उद्योग में यांत्रिक अवजारों का उपयोग होने लगा है इसलिए साधारणतः वर्ष १९६० से पंजाब में अधिक अन्न उपजाओ अभियान के अन्तर्गत पुरानी पद्धति के स्थान पर नये यंत्रों ने स्थान ले लिया है।

नए यन्त्रों के कारण पंजाब में वर्ष १९७८ तक ५०० लोगों की दुर्घटना में मृत्यु हुई, जो देश में कृषि के अन्दर यंत्रों से होने वाली मृत्यु ५००० का दशांश है। अब तो यन्त्रीकरण इतना अधिक हो गया है कि केवल पंजाब के १२ हजार गांवों में १ लाख ७० हजार यन्त्र हैं।

अपघात होने का मुख्य कारण यह है कि जमींनदार बाहर से लाये हुए मजदूरों को शराब पिलाकर रातोदिन काम लेते हैं। शरीर से थके नशे में चूर मजदूर मद होशी में दुर्घटना का शिकार होता है। दुर्घटना के कारण या तो मजदूर का अंग भंग हो जाता है या उसकी दुखद मृत्यु हो जाती है। ट्रैक्टर, बिजली की मोटर आदि यंत्रों की वजह से भी अपघातों की मात्रा बढ़ गई है। कीटाणु नाशक दवाइयों के छिड़काव से खेत मजदूरों के स्वास्थ्य पर दुष्परिणाम होते हैं। वह रोगग्रस्त हो जाता है। उसके लिए समुचित चिकित्सा की व्यवस्था भी नहीं है। अनाज संरक्षण के लिए औजार इस्तेमाल करने वाले यह किसान कारखानों के कामगारों की भाँति इन्हें कोई सुविधा नहीं देते हैं। अतः इनके लिए निम्नांकित योजना लागू किया जाय।

(I) अनाज संरक्षण के लिए किसान, जो कीटनाशक दवाइयों का प्रयोग करते हैं उन दवाइयों के दुष्परिणाम से बचने के लिए खेत मजदूरों को शरीर संरक्षण हेतु शिरस्त्राण, चस्मा आदि की व्यवस्था की जाय।

(II) खेत मजदूरों के स्वास्थ्य की जाँच कृषकों द्वारा कुशल चिकित्सों से कराई जाय तथा समुचित उपचार की व्यवस्था हो।

(III) वर्क्समेन कम्पेनशेसन एक्ट में संशोधन किया जाय ताकि अपघात के समय खेतिहर मजदूर को भी समुचित मुआवजा मिल सके।

(IV) जनरल इन्स्योरेन्श कारपोरेशन ग्रामीण उपधान योजना तय्यार करके अमल किया जाय।

भूमि सुधार के उपाय

पहली पंच वर्षीय योजना से ही आर्थिक योजना में खेती भूमि सुधार पर अधिक जोर दिया जा रहा है। वर्ष १९७८-८३ की पंच वर्षीय योजना में योजना मण्डल ने ग्रामीण विकास के लिए भू सुधार योजनाओं को पुनः प्रमुखता दी है। विद्वानों का स्पष्ट मत है कि समुचित भूमि वितरण से पहले की अपेक्षा अधिक लोग रोजी-रोटी कमा सकेंगे।

भूमि सुधार कार्य मात्र सामाजिक न्याय का ही प्रश्न नहीं है। अपितु भूमि सुधार पर ही देश का भावी विकास भी निर्भर है। यदि किसानों के पास की अधिक जमीन सरकार अपने अधिकार में लेकर उसका उपयोग करती है तो समस्या का समुचित समाधान हो सकता है। किन्तु व्यवहार में भू सुधार योजना के अन्तर्गत अभी तक यश के स्थान पर अपयश ही मिला है।

३१ जुलाई १९७७ को देश में अधिक जमीन ४.०४ मिलियन एकड़ थी । सरकार ने उसमें से २.१ मिलियन एकड़ जमीन का बटवारा किया यद्यपि योजना मण्डल को २९.५ मिलियन एकड़ जमीन मिलने की अपेक्षा थी । इससे यह बात स्पष्ट हो गई कि जो जमीन उपलब्ध होने वाली थी उसका मात्र १० % ही उपलब्ध हो सकी है । प्रत्यक्ष में मात्र २७ % जमीन बाँटी गई । इस प्रकार एक वृहत योजना वाला भू सुधार कार्य भी सफल नही हो सका है ।

आजादी के बाद भू सुधार कार्यक्रम का यदि विश्लेषण किया जाय तो ऐसा प्रतीत होता है कि जमीनदारी उन्मूलन कानून का पूर्ण रूपेण क्रियान्वयन नहीं हुआ है । सीलिंग कानून भी जिस उद्देश्य से बनाया गया है उसकी पूर्ति के लिए यह कानून सर्वथा अक्षम है । यह सभी असफल क्यों हुए ? इसके बारे में सरकार ने समय-समय पर स्पष्टी करण भी दिया है । इस सम्बन्ध में सबसे ताजी रिपोर्ट योजना मण्डल की है । उसने असफलता के निम्नांकित कारण बताए हैं :-

(I) दृढ़ राजकीय इच्छा शक्ति का अभाव

कानून और उसके अमल में जो ढील बरती गई इस कारण से छोटी-छोटी कठनाइयां भी बड़ी लगने लगती हैं ।

(II) मूलतः अथवा बहुसंख्य लोगों का बिखराव

चूंकि खेतिहर मजदूर अथवा बटाईदार आर्थिक एवं सामाजिक दोनों ही दृष्टि से पिछड़े एवं दबे हैं । वे पूर्णतया असंगठित भोले एवं सीधे हैं । इस कारण इन्हें उठाने को कौन कहे बराबर दबाया ही गया है । असंगठित होने के कारण वे पूरा लाभ उठा सकने में असमर्थ हैं । यही कारण है कि भू सुधार के सम्बन्ध में उनकी ओर से जो प्रतिक्रिया होनी चाहिए नहीं हो पाती है ।

अपूर्ण शासकीय यंत्रणा

भू सुधार कानून का पालन करने अथवा उस पर अमल कराने

का काम राजस्व विभाग की ओर रहता है। इन अधिकारियों के पास और अनेक काम रहते हैं। समयाभाव एवं कार्याधिकता के कारण भूसुधार कानन की ओर उन्हें जितना ध्यान देना चाहिए वे नहीं दे पाते हैं। इसलिए न चाहते हुए भी इनकी ओर से भू सुधार के बारे में काफी उपेक्षा हो जाती है। अधिक वरिष्ठ राजनेताओ के पास जमीनें अधिक हैं। इन अधिकारियों में साहस नहीं है कि वे उन राजनेताओं की ओर उँगली उठा सकें। वे राजनेताओं से लड़ाई लेना ठीक नहीं समझते हैं। सीलिंग अधिकारियों की जमीदारों से घनिष्टता रहती है। कारण कि अधिकांश अधिकारी या तो पहले से राजाओं के आश्रित थे या वर्तमान समय हैं। इस कारण भूसुधार कानून में यथोचित प्रगति नहीं हो सकी है।

भू सुधार कानून का समुचित लाभ लेने के लिये सम्बन्धित व्यक्ति के पास पर्याप्त लिखा पढ़ी हो तभी खेतिहर मजदूर या बटाई मजदूर अपना अधिकार प्रस्थापित कर सकता है। न्यायालय में उपस्थित होकर न्याय प्राप्त कर सकता है। किन्तु अधिकांश अपढ़ या अशिक्षित बटाई-दार समुचित लिखा पढ़ी करने में असमर्थ हैं।

१९७८ में केन्द्रीय कृषि विभाग ने एक समिति बनाया। समिति ने भी निर्णय लिया कि भू सुधार कानून अपूर्ण है। योग्य सहायता नहीं दे पा रहा है। १९७८ के पंचवर्षीय योजना के प्रारम्भ में यही उल्लेख है कि अपूर्ण कानून के कारण भूसुधार कानून का पूर्णतया अमल नहीं हो पा रहा है।

जमीन सम्बन्धी पत्रजात अद्यावत हो उसके लिये योजना मण्डल ने सुझाव दिया है कि देहात से लेकर ऊपर तक ऐसी व्यवस्था की जाय, जो निस्पक्ष रूप से कार्य कर सके। तथा बहुसंख्य लोगों का हित देखने में सक्षम हो। उचित यही होगा कि देहात में ऐसी समिति, गठित की जाय जो जमीन विषयक कागज पत्र ठीक से रख सके तथा समय समय पर उसकी जानकारी दे सके। किन्तु सब कार्य प्रबल राजकीय इच्छा पर

निर्भर करता है। ग्राम समितियों के अतिरिक्त सबल मजदूर संगठन की अति आवश्यकता है—तभी निर्धन, दीनहीन एवं दलित खेतिहर मजदूर एवं बटाई वाले किसानों का कुछ भला हो सकता है।

खेतिहर मजदूर संगठनों में महिला श्रमिकों की साझेदारी

साधारणतया 'श्रमिक' का अर्थ 'मशीन की सहायता से कारखानों में काम करने वाला' से समझा जाता है किन्तु वस्तुस्थिति कुछ और है। विश्व के अविकसित देशों में अधिकांश मजदूर खेती में काम करते है। ऐसे लोग जिनके पास खेती नहीं रहती है वह भी दूसरों की खेती में काम करके अपनी उदरपूर्ति करते हैं। औद्योगिक दृष्टि से प्रगतिशील देशों में भी खेतिहर मजदूरों का बहुत बड़ा स्थान है। भारत जैसे कृषि प्रधान देश में खेतिहर मजदूरों की संख्या अन्य विकासशील देशों की तुलना में अधिक है।

वर्ष १९७५ में विकासशील देशो में कृषि उद्योग तथा अन्य उद्योगों में काम करने वाली महिलाओं की संख्या निम्नांकित थी—

कारखानों में— १२.३८ प्रतिशत
सरकारी व निजी कार्यालयों में— १३.८३ प्रतिशत
कृषि में— ७३.७९ प्रतिशत

विश्व के अन्य कृषि प्रधान देश के अनुसार भारत में भी महिलाओं का घर के काम के अलावा खेतिहर मजदूर के रूप में उत्पादन कार्य में बहुत बड़ा योगदान है किन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि किसान कहते ही हमारे आखों के सामने पुरुष किसान का ही स्वरूप आता है। भारतीय श्रमिकों में आजकल उदर पूर्ति के लिये खेतों पर काम करने की प्रवृत्ति बढ़ रही है और वे कृषि पर काम करने में अधिक रुचि ले रहे हैं।

वर्ष १९०१ से १९५१ तक महिला श्रमिकों का विभाजन निम्नांकित प्रकार से किया जा सकता है :–

सभी प्रकार के कार्य में		कुल महिला	खेतिहर		महिला	श्रमिक
वर्ष	हजार में	श्रमिक हजार में	मजदूर (सम्पूर्ण) हजार में	संख्या प्रतिशत	अन्य कार्यों में लगी महिलायें हजार में	महिला कर्मचारी प्रतिशत
१९०१	२३६.०५४	३९.६२५	२५.४३७	१०.८	१४.२४९	७%
१९११	२४९.५५९	४२.६३५	२९.७१०	११.९	१२.९२५	५.२%
१९२१	२४२.७१३	४१.२९२	२९.२८८	११.८	१२.००४	४.८%
१९३१	२७५.९१२	३७.२०६	२५.५८८	९.३	१२.२१८	४.४%
१९४१	३१४.८७६	३२.१५२	१६.९२२	५.४	१५.२३०	४.८%
१९५१	२५६.५२८	४१.७४३	३१.२४४	८.७	९९१२	२.८%

उपरोक्त काल खण्ड में एक बात स्पष्ट रूप से हमारे सम्मुख आती है कि खेतिहर महिला श्रमिकों की तुलना में अन्य स्थानों पर काम करने वाली महिलाओं की संख्या में ह्रास हुआ है ! दूसरी ओर खेतिहर महिला मजदूरों की संख्या बढ़ रही है । महिलायें अपने खेतों पर तथा अन्यलोगों के खेतों पर काम करती हैं। गत अर्ध शतक में खेतिहर महिला मजदूरों की संख्या में चढ़ाव उतार होता रहा है फिर भी महिला कर्मचारियों में बढ़ोत्तरी हुई है । भारतीय राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था में खेतिहर महिला मजदूर उत्पादकता की दृष्टि से प्रमुख भागीदार है ।

"खेतिहर महिला मजदूरों की दिनचर्य्या"

खेती पर काम करने वाली अधिकांश महिला कर्मचारियों की दिन-

चर्य्या बहुत कठिन है। हरियाणा प्रान्त जहाँ हरित क्रान्ति का आदर्श नमूना है-की महिलाओं के जीवन चर्य्या की छानबीन की गई तो पता चला कि ७५ साल की वृद्ध महिला को प्रतिदिन १० घन्टे काम करना पड़ता है। खेती के काम में ५० '/. महिलायें काम करती हैं। कुक्कुट पालन व दुग्ध व्यवसाय अधिकांश महिलाओं की मदद से चलते हैं। प्रसूति व अपौष्टिक आहार के कारण इनकी आयु कम हो जाती है। विकसित देशों में स्त्रियों की आयु सीमा पुरुषों की अपेक्षा अधिक होती है। भारतवर्ष में महिलाओं को प्रातः ४ बजे उठना पड़ता है। इसके बाद घर की सफाई, पानी भरना, जलाने के लिए लकड़ी इकट्ठा करना, परिवार के लिए भोजन पकाना, कपड़े धोना, बर्तन मांजना, गाय-भैंस का दूध निकालना, चावल कूटना, अनाज पीसना आदि कार्य करने पड़ते हैं। रात्रि ९ बजे तक काम करते रहने के बाद तब कहीं विश्राम का स्थान आता है।

"रोजी के विविध प्रकार"

खेतिहर महिला मजदूरों की संख्या तथा काम का स्वरूप उनके देश-गाँव की आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक स्थिति पर निर्भर करता है। जिनकी स्वयं खेती होती है वे महिलायें अधिकांश रूप में गृह कार्य करती हैं। भूमिहीन एव अल्प भू-धारक महिलायें खेत में मजदूरी करती हैं। गरीबी के कारण भी महिलायें मजदूरी करने को बाध्य रहती हैं। जहाँ पर खेती की उत्पादन क्षमता कम रहती है वहाँ खेती की मजदूरी में महिलाओं की संख्या ज्यादा रहती है। इसका मुख्य कारण गरीबी है। इस प्रकार आर्थिक दृष्टि से ग्रामीण महिलाओं के स्पष्टतः तीन वर्ग बन गये हैं प्रथम-केवल गृह कार्य करने वाली महिलायें। द्वितीय स्वयं की खेती पर काम करने वाली महिलायें। यद्यपि तीसरी श्रेणी की रचना स्पष्ट नहीं है किन्तु एक तीसरी श्रेणी भी है यह मानना पड़ेगा।

जातिनिष्ठ सामाजिक प्रतिष्ठा

महिला की मजदूरी का स्वरूप तथा खेती के काम में सहयोग जाति पर भी निर्भर करता है। जातीय प्रभाव एवं सामाजिक प्रतिष्ठा का भी खेतिहर महिला मजदूरों पर असर पड़ता है। तथा कथितउच्चवर्गीय महिला की अपेक्षा निम्नलिखित महिलाओं का सहभाग ज्यादा रहता है। दलित तथा बनवासी महिलाओं की संख्या और भी ज्यादा रहती है। १९६१ की गणनानुसार सर्व साधारण महिलाओं का मजदूरी में साझेदारी का स्वरूप २७.९५ % है। दलित एवं बनवासी महिलाओं का स्वरूप अनुक्रम से ३५.३ % और ८.५२ % है।

दलित एवं बनवासी महिलाओं का ग्रामीण क्षेत्रों में प्रमुखता अनुक्रम से ९० % व ९७ % है। इन महिलाओं में साक्षरता की स्थिति अति दुःखद है। भारत में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियां अधिक मात्रा में अशिक्षित हैं। शहरों की तुलना में ग्रामीण क्षेत्र में महिलाओं की शिक्षा नगण्य है। दलित और बनवासी महिलाओं की दशा शिक्षा की दृष्टि से सोचनीय है।

दलित एवं बनवासी महिलाओं की खेती के काम में बहुत बड़ी साझेदारी है किन्तु स्थान कनिष्ठ है। उनके आर्थिक, सामाजिक तथा शिक्षण विषयक पिछड़ेपन के कारण यह वर्ग घोर संकट में रहता है। इन संकटों का बहुत कुछ कारण जातिगत भी है।

सांस्कृतिक कारण

खेतिहर महिला मजदूरों की संख्या एवं काम के स्वरूप पर एक और पहलू का प्रभाव है वह है सांस्कृतिक पहलू। बंगाल और पंजाब इन दोनों प्रदेशों में महिलाओं की साझेदारी बहुत कम है। यद्यपि बंगाल गरीब प्रान्त है उसकी तुलना में गेहूं की विपुलता के कारण पंजाब धनी प्रान्त है। महिलाओं में मुस्लिम महिलाओं का परदा प्रथा

के कारण राष्ट्रीय उत्पादन में बहुत ही कम योगदान है। यही कारण है कि मुस्लिम महिलाओं की संख्या बतौर कर्मचारी बहुत कम है।

वेतन श्रेणी

खेतिहर मजदूरों को बहुत कम वेतन मिलता है। १९५० में महिला खेतिहर मजदूरों की मजदूरी मात्र ५० पैसे थी। धीरे धीरे विविध राज्यों में न्यूनतम मजदूरी कानून बना। १९७८ तक ३ रुपये रोज से लेकर ९ रुपये रोज की मजदूरी निश्चित की गई। किन्तु मजदूरी निर्धारण तथा उसकी समानता मात्र पुस्तकों में रह गई। प्रत्यक्ष व्यवहार में न तो समानता आई और न ही निर्धारित न्यूनतम वेतन ही कर्मचारियों को प्राप्त हुआ। उद्योगों में महिलाओं को समानता देने के लिए समान वेतन निर्धारण किया जाना अति आवश्यक है। भारत में समान वेतन नियम प्रचार में तो है किन्तु व्यवहार में लेशमात्र भी नहीं है।

खेतिहर मजदूर संगठनों का प्रयास भी इस दिशा में नगण्य है। सरकारी कृषि फार्म पर समान वेतन न देना पड़े इसलिए महिलाओं से काम लेना बन्द कर देते हैं। ऐसा मत बना है कि स्त्रियाँ पुरुष की तुलना में कम काम कर पाती हैं। कुछ आन्दोलन के कारण सरकारी कृषि फार्म पर महिलाओं को काम दिया जाने लगा है। इससे ऐसा निष्कर्ष निकलना स्वाभाविक है कि न्यूनतम वेतन कानून जिसमें जो महिला और पुरुष दोनों को समान वेतन मिलने का उल्लेख है का प्रतिपालन होना चाहिये।

विगत १५ वर्षों में कृषि उद्योग में यांत्रिक विकास हुआ है किन्तु इस यांत्रिकीकरण का महिला कर्मचारियों पर क्या प्रभाव पड़ा है—अभी तक स्पष्ट नहीं है। किन्तु एक बात तो स्पष्ट है कि यांत्रिकीकरण से महिलाओं के घर के काम में कोई लाभ नहीं है। महाराष्ट्र के ठाणे जिला में पालघाट तथा नव्सर इन दो तहसीलों के १५० ग्रामीण स्थानों का इस दृष्टि से निरीक्षण किया गया। जिससे पता चला कि आर्थिक

विकास का लाभ ग्रामीण महिला कर्मचारियों को नहीं मिला । महिला मजदूरों की काम में साझेदारी क्रमशः कम होती गई है । उसी प्रकार पुरुष और स्त्री मजदूर के वेतन अर्थात् आय में विषमता बढ़ गई है । अतः निष्कर्ष यह निकला है कि यदि विकास योजनाओं के अमल में मौलिक परिवर्तन नहीं किया गया तो महिलाओं को बेकारी एवं आर्थिक समस्याओं से निपटना पड़ेगा ।

श्रम संघों में महिलाओं का योगदान :

यह बात स्पष्ट है कि महिलाओं की समस्यायें इतनी जटिल हैं कि उनके समाधान के लिए पर्याप्त परिश्रम की आवश्यकता है । इनकी समस्यायें सम्पूर्ण श्रमिकों के लिए खुली चुनौती हैं ।

आई० एल० ओ० के भूतपूर्व मुख्य संचालक मिस्टर नितफ्रेण्ड जेक्स ने एक बार कहा था कि गरीब से गरीब भूमिहीन ग्रामीण मजदूर और कारीगरों की समस्या को देखा जाय तो यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि एशिया के श्रम संगठनों ने उनके लिये कुछ भी नहीं किया है –इतनी भीषण व जटिल समस्या के हल के लिए हमें अपने दृष्टिकोण में बदल करना होगा । निस्सन्देह यह दायित्व श्रम सगठनों का ही है । किन्तु भारतीय श्रम आन्दोलन में इस ओर ध्यान नहीं दिया गया । श्रम आन्दोलन का सम्पूर्ण ध्यान शहर के बड़े-बड़े औद्योगिक केन्द्रों तक ही सीमित रह गया । यह प्रसन्नता की बात है कि इधर कुछ वर्षों में श्रम संगठनों द्वारा दो प्रकार की पहल की गई है । प्रथम उनको संगठित करने का कार्य दूसरे उनके लिए कल्याणकारी योजनायें बनाना तथा सहकारी आन्दोलन द्वारा ग्रामीण गरीब एवं खेतिहर मजदूरों की आर्थिक दशा सुधारने का उपाय करना । अब यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि खेतिहर मजदूरों के आन्दोलन एवं संगठन में महिला श्रमिकों की साझेदारी कितनी है ? शहरी औद्योगिक क्षेत्रों के श्रम आन्दोलनमें महिलाओं की साझेदारी बहुत कम है । ठीक उसी प्रकार से ग्रामीण क्षेत्रों के श्रम आन्दोलन में भी उनका योगदान निराशाजनक है । इसका मुख्य

कारण है कि गृह कार्य में महिलाओं के व्यस्त रहने के कारण आन्दोलन के लिए उनको समय निकालना बहुत कठिन है राष्ट्र संघ ने भी महिलाओं से अपील किया है कि श्रम आन्दोलन में वे अधिक से अधिक योगदान दें। यदि महिलाओं के योगदान की अपेक्षा है तो यह कार्य मात्र सद्इच्छा से नहीं होगा। परम्परागत प्रवृत्ति, रीति- रिवाज, जो पीढ़ी दर पीढ़ी मजबूत एवं बंधन कारक बन गयी हैं को बदलना होगा। तभी भारतीय श्रम आन्दोलन में महिलाओं की साझदारी की अपेक्षा की जा सकती है। किन्तु फिर भी सभी प्रकार की कठिनाइयां होते हुए भी श्रम आन्दोलन में महिलाओं के योगदान की मात्रा धीरे धीरे बढ़ रही है।

सेवा का विधायक कार्य :

विधायक कार्य का प्रश्न उठते ही गुजरात की सेवा संस्था का प्रमुखता से विचार आता है। वर्ष १९७१ में यह संस्था स्थापित हुई। अहमदाबाद में महिलाओं के लिए कल्याणकारी कार्य करना इस सस्था का मुख्य उद्देश्य था। सिलाई सिखाना एवं महिलाओ के बाल संम्वर्धन में उनकी सहायता करना- यह दो मुख्य कार्य इस संस्था ने प्रथम चरण में प्रारम्भ किया। इसके बाद वर्ष १९७६ में इस संस्था ने "महिला सहकारी बैंक" का कार्य प्रारम्भ किया। इन सहकारी बैंकों द्वारा अशिक्षित एवं गरीब महिला कर्मचारियों को स्वयं के काम-धन्धे के लिए कर्ज मिलने की व्यवस्था की गई है। आज भी महाराष्ट्र एवं अन्य स्थानों में इस प्रकार की संस्थायें प्रारम्भ की जा रही है।

"आन्दोलन कार्य"

श्रमिक संगठनो द्वारा किए गये आन्दोलन में महिला श्रमिकों की यद्यपि बहुत बड़ी साझेदारी नहीं है किन्तु नगण्य भी नहीं है। पच्छिम महाराष्ट्र के किसान आन्दोलन विशेषकर खेतिहर मजदूर संगठनों में महिलाओं की साझेदारी विषय पर १९७६ में एक जानकारी प्रसारित की गई, जिसमें वर्ष १९७० से १९७३ की वअधि में

महाराष्ट्र में फैले हुए अकाल के समय होने वाले आन्दोलन में महिलाओं ने बड़े साहस के साथ जुलूस आदि में भाग लिया। चर्चा एवं विचार विनिमय तथा अपनी बात मनवाने में महिलाओं की जिद एवं सहनशीलता भी प्रकट हुई है।

उपरोक्त चर्चा से यह बात स्पष्ट हो गई है कि खेतिहर महिला मजदूरों की समस्या केवल उन्हीं से सम्बन्धित नहीं है बल्कि इनकी समस्या सारे समाज की समस्या है। सम्पूर्ण समाज का आर्थिक तथा सामाजिक विकास होने के लिए महिलाओं की दयनीय अवस्था में सुधार आवश्यक है। उनको संगठित होना भी जरूरी है। साथ ही उनकी लड़ाकू प्रवृत्ति, बुद्धि एवं कतृत्व को जाग्रत कर उनकी अवस्था में परिवर्तन लाना ही होगा। यद्यपि स्त्रियों के गृहकार्य की मेहनत कम करने में पुरुष वर्ग प्रयत्नशील है किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि तब तक श्रम आन्दोलन में स्त्रियों का कोई योगदान ही नहीं रहेगा। गृह कार्य सम्बन्धी समस्या पर हल ढूँढ़ना पड़ेगा। शिक्षण तथा सामाजिक जागृति से महिलाओं के मन में तीव्र ध्येयवाद उत्पन्न करना होगा। निकट भविष्य में जब तक महिलायें अपने पुराने दृष्टिकोण में परिवर्तन नहीं लाती हैं तब तक सुख एवं समृद्धि का जीवन प्राप्त करना कठिन है। महिलाओं को इस बात का ध्यान रखना होगा कि उनमें होने वाली क्रान्तिकारी बदल भी भारतीय संस्कृति की पोषक हो। क्रान्तिकारी बदल से अपेक्षित फल प्राप्त करने के लिए कठोर परिश्रम करना होगा।

इस बात की प्रसन्नता है कि महिला श्रमिक एवं श्रम संगठन नेताओं ने यह बात स्वीकार किया है कि श्रम आन्दोलन में महिला श्रमिकों की प्रभावी भूमिका होनी चाहिये। निःसन्देह उन्होंने युग की ज्वलंत माँग पर प्रभावी दस्तक दिया है। उनके इस प्रयास में कितनी सफलता मिलेगी यह तो भविष्य ही बताएगा। आने वाला समय ही उनके प्रयास का उचित मूल्यांकन कर सकेगा।

बंधुआ मजदूर

Bonded Labour system (Abolition) Act 1976 में निम्नलिखित परिभाषा दी है ।

The Act defines the "Bonded Labour system" as a system of Forced labour under which the debtor enter's, or, has or is presumed to have enterd, in to an agreement with of the creditor to the effect that

1) In consideration of an advance obtained by him or by any of his lineal ascendents or decendants (whether or not such advance is evidenced by any document) and in consideration of the interest if any, due to such advance- or,

ii) in pursuance of an obligation devaling on him by succession, or,

iii) for any economic consideration received by him or by any of his lineal ascendants or decendants or,

iv) or reason of his birth in any particular caste or community be would,

1) render by himself or through any member of his family or any personal dependent on him, labour or service to the creditor, or for the benefit of the credit or for specified period or for an unspecified period, either without wages or for nominal wages or,

2) forfeit the freedom of employment or other means of livelihood for a specified period or for an unspecified period or,

3) forfeit the right to move freely throughout the territory of India or,

4) forfeit the right to appropriate or sell at a market value any of his property or product of his labour or the labour of a member of his family or any person dependent on him, and includes the system of foreed or partly forced labour under which a surity for a debtor enters, or has, or is presumed to have entered into an agreement with the creditor to the effect that in the event of the failure of the debtor to reply the debt, he would render the bonded labour on behalf of the debtor.....

परम्परा एवं पुरानी परिपाटी से यह बात परिलक्षित होती है कि ग्रामीण एवं असंगठित मजदूरों में बेगार प्रथा है, जिससे वे अति दुर्बल एवं कष्टित हैं। वर्ष १९७६ से बेगार करने वालों की संख्या का निर्धारण तथा उन्हें इससे मुक्ति दिलाने का दायित्व जिला दण्डाधिकारी पर है। इन मजदूरों के पुनर्वास का कार्य यद्यपि बड़ा कठिन एवं झंझट का है, जो अपने में एक कठिन कार्य है। राजकीय योजनाएं भी इस कार्य को करने में नितांत अक्षम हैं। यद्यपि राज्य सरकारें एवं केन्द्र सरकारें उनको सुविधा प्रदान करने की अपील निरन्तर कर रही हैं किन्तु उनकी घोषणायें भी निष्प्रभावी हैं। वर्ष १९७८-७९ की वार्षिक योजना के अन्तर्गत इन मजदूरों के पुनर्वास के लिए एक करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई थी फिर भी पुनर्वास की समस्या ज्यों की त्यों बनी रह गई है।

बेगार करने वालों की संख्या निर्धारण हेतु पिछड़ी जाति आयुक्त तथा नेशनल सेम्पल सर्वे संगठन ने अनेक प्रकार से निरीक्षण एवं अध्ययन करके अपनी आख्यायें प्रस्तुत की हैं। गाँधी शान्ति प्रतिष्ठान तथा नेशनल लेबर इन्स्टीट्यूट ने भी विस्तृत जाँच करने के लिए ख्याति अर्जित किया है।

इन विभिन्न जांच के माध्यम से, जो बेगार करने वालों की संख्या निर्धारित की गई है वह भी पूरी तरह से सही नहीं है। कारण कि यह निर्धारण अनुमान के आधार पर है। कोई भी तंत्र इस कार्य को कर सकने में अभी तक सफल नहीं हो सका है।

यद्यपि लेबर इन्स्टीट्यूट ने जिलेवार अध्ययन एवं निरीक्षण किया है। परिणाम यह निकला है कि बेगार करने वालों को प्रशिक्षित करके संगठित होने के लिये तैयार किया जा सकता है। इस प्रयास के तारतम्य में प्रशिक्षण शिविरों का भी आयोजन किया गया है। इस प्रशिक्षण शिविर का दूसरा उद्देश्य यह भी था कि इनमें नेतृत्व करने की क्षमता उत्पन्न करके, प्रचलित कानून के सहारे समस्याओं का निराकरण करने का प्रयास करना था। बेगार करने वाले मजदूरों का प्रश्न असंगठित ग्रामीण मजदूरों से जुड़ा था। मात्र जुड़ा ही नहीं तो अब उसका अविभाज्य अंग बन गया है।

उपरोक्त दोनों ही समस्याओं का सरकार की सहायता से निराकरण हेतु दस राज्य जिसमें आन्ध्र, विदर्भ, कर्नाटक मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, उड़ीसा, गुजरात, राजस्थान, महाराष्ट्र, तमिलनाड सम्मिलित हैं– के ७००० गाँव अध्ययन के लिये चुने गये। मई १९७८ से विस्तृत जाँच की गई। इस विस्तृत जांच का एक मात्र उद्देश्य बेगार करने वालों की संख्या का निर्धारण करना, उनकी आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति पर प्रकाश डालना, बेगार से उन्हें मुक्त कराना तथा मुक्त लोगों को पुनः बसाने में राज्य एवं केन्द्र सरकार को सहयोग करना था। इसी प्रकार कृषि क्षेत्र में कर्ज के बोझ से दबे मजदूरों की संख्या निर्धारित करना भी एक अन्य उद्देश्य था। उड़ीसा राज्य को छोड़कर शेष राज्यों में बेगार करने वालों की संख्या २२-४ लाख थी, जो राज्यों के अनुसार निम्नांकित है।

बेगार करने वालों की संख्या

राज्य	संख्या	प्रतिशत
आन्ध्र प्रदेश	३,२५०००	४.९६ प्रतिशत
बिहार प्रदेश	१,१००००	१.७ ,,
गुजरात प्रदेश	१,७१०००	९.५ ,,
कर्नाटक	१,९३०००	७,६ ,,
मध्य प्रदेश	४,६७०००	११,९ ,,
राजस्थान	६०,०००	९.४ ,,
तमिलनाड	२,५०,०००	६ ,,
उत्तर प्रदेश	५,५५०००	१०.५ ,,

उपरोक्त राज्यों में जिन स्थानों पर संख्या अधिक है। तदनुसार आन्ध्र में तेलांगना, तमिलनाड में उत्तर पश्चिम अर्काट एवं धर्मपुरी, कर्नाटक में शिमोगा एवं बंगलोर, महाराष्ट्र के व्याख्य की तरफ के जिले, गुजरात में बढ़ोदा तथा पंचमहल एवं उत्तर प्रदेश राज्य में पश्चिम तथा उत्तरी भाग का क्षेत्र, उपजाऊ पट्टी के देवरिया, बलिया पूर्वी उत्तर-प्रदेश, वाराणसी एवं मीरजापुर जिले विशेष रूप से सम्मिलित हैं।

बेगार प्रथा काप्रारम्भसवर्ण तथा पिछड़ी जातियां हैं- वे आपसी संघर्ष से हुआ है। भारत में अनुसूचित तथा पिछड़ी जाति में बेगार करने वालों की संख्या अधिक है। बड़े दुःख की बात है कि ६० प्रतिशत बेगार करने वालों में १८.३ प्रतिशत पिछड़ी जातियों के लोग हैं।

आज भी सेठ साहुकार तथा बड़े किसान कर्ज बन्धन प्रथा चालू किये हैं। बड़े किसान तथा साहूकार कर्ज बन्धन के माध्यम से सस्ते मजदूर रखते हैं। बधुआ मजबूरों का ४१.३ प्रतिशत मजदूरों को ३०० रुपये तक, २१.१ प्रतिशत ३०० से ७०० रुपये तक, १५ प्रतिशत मजदूरों को ७०० से १००० रुपये तक कर्ज लेने की आवश्यकता पड़ती है।

११.६ प्रतिशत लोगों को ४० रुपये से अधिक ब्याज देना पड़ता है। १०.५ प्रतिशत बधुआ मजदूरों को २५ से ४० प्रतिशत तक ब्याज देना पड़ता है। ४७.५ प्रतिशत लोगों को अपने दैनिन्दिन काम के लिये तथा ३६.६ प्रतिशत लोगों को त्योहार तथा सामाजिक कार्य के लिये कर्ज लेना पड़ता है। अभी तक विभिन्न माध्यम से उपरोक्त जानकारी मिली है। बंधुआ मजदूरों में ९० प्रतिशत लोगों को अन्य स्थान पर मजदूरी ढूढ़ने का अवसर नहीं मिलता है। इन्हें अपना देहात छोड़कर मजदूरी ढूढ़ने की स्वतन्त्रता नहीं है। सब प्रकार से प्रतिबन्धित यह मजदूर अपने मौलिक अधिकार साहुकार या बधुआ रखने वाले सम्पन्न किसान के पास कर्ज लेकर अपरोक्ष रूप से गिरिवी रख देता है। खेती में यांत्रिक विकास होने के बावजूद बंधुआ मजदूर प्रथा का आज तक अन्त नहीं हुआ है। प्रगतिशील खेती में भी यह प्रथा चल रही है।

सत्य तो यह है कि स्वतन्त्र खेतिहर मजदूर तथा बंधुआ मजदूरों के रहन सहन में बहुत कम अन्तर है। बन्धक से मुक्त करने के बावजूद ऐसे मजदूरों को हम समृद्धि का मार्ग नहीं दिखा सकेंगे। यह बात अब स्पष्ट ही गई है कि बधुआ प्रथा समाप्त नहीं हुई है। अतः बेगार प्रथा को समाप्त करने का हम सबको दृढ़संकल्प करना ही होगा।

ग्रामीण मजदूर कौन ?

ग्रामीण मजदूर किसे कहते हैं ? यह कहना बड़ा कठिन है। क्योंकि ग्रामीण क्षेत्र में काम करने वाले मजदूरों में विभिन्न हित सम्बन्ध सम्मिलित हैं। हित सम्बन्ध गरीबी पर निर्भर करते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के १४१ व १४९वें प्रस्ताव की अनुशंसाओं के अनुसार ग्रामीण कामगारों की व्याख्या निम्नांकित है :—

जो मजदूर खेती अथवा तत्सम्बन्धी व्यवसाय में काम करता है अथवा जिनको ग्रामीण कारीगर कहते हैं या इस व्यवसाय में लगे हैं,

खेतों में रोजन्दारी, बटाई पर काम करते हैं–उसे ग्रामीण मजदूर समझना चाहिये। इसमें कुल का भी सम्मिश्रण होता है।

ग्रामीण मजदूरों के सम्बन्ध में, जो विविध प्रकार के विवेचन किये गये हैं उन सबमें एक बात अवश्य सम्मिलित है–वह है गरीबी, भरपूर जमीन का न रहना, खेती के लिये आवश्यक अवजार विभिन्न स्थिति से निपटने के लिए ग्रामीण मजदूर प्रचलित सामाजिक कुप्रथाओं, आर्थिक रचनाओं की बलि बढ़ रहे हैं।

विभिन्न हित सम्बन्धों की ग्रामीण संघटना होनी चाहिये। जैसे छोटे किसान, हिस्सेदार, भूमिहीन मजदूर, ग्रामीण मजदूर एवं कारीगर इनका एक प्रभावी संगठन होना चाहिये ताकि इस संगठन के माध्यम से वे श्रीमंत किसानों के उत्पीड़न, उनकी ओर से होने वाले अन्याय का वे सही ढंग से प्रतिकार कर सकें। एक संगठन होने के नाते वह आर्थिक दृष्टि से समर्थ होगी। चूंकि सभी समस्याओं का एक प्रमुख कारण है–गरीबी। इसलिये कम उत्पन्न गुटों के लोगों को एकत्र आना चाहिये।

दूसरा विचार यह है कि कुछ वर्ग जैसे भूमिहीन खेत मजदूर और उसका मालिक भले ही खेत मालिक छोटा ही हो फिर भी उनके हित सम्बन्ध परस्पर विरोधी रहते हैं। इसलिये इन विभिन्न वर्गों के अलग अलग संगठन होना चाहिये। खासतौर से भूमिहीन मजदूरों के लिये यह आवश्यक है। उसकी समस्याओं का समाधान स्वतन्त्र संगठन के बाद ही सम्भव है।

पहले किसान सभा आदि जो संगठन बने, उसमें सभी का प्रवेश था। परन्तु कुछ वर्ष पूर्व अनुभव में ऐसा आया कि प्रत्येक वर्ग के स्वतन्त्र संगठन से ही इन असहायों को समस्या का समुचित समाधान हो सकेगा।

खेतिहर मजदूरों के संगठन

गत ५० वर्षों से अन्य मजदूर संगठनों की भांति देश के कुछ क्षेत्रों में खेतिहर मजदूरों के संगठन काम कर रहे हैं। राजकीय और गैर राजकीय दोनों ही प्रकार के संगठन खेतिहर मजदूरों के बीच हैं। इनका एक मात्र उद्देश्य इन निर्धन और पिछड़े मजदूरों की आर्थिक स्थिति में सुधार लाना एवं उनके जीवन स्तर को ऊँचा उठाना है। आर्थिक स्थिति में सुधार के लिये सामुहिक सौदेबाजी का सहारा लिया गया है। इन संगठनों का नेतृत्व मुखिया के रूप में उभर कर सामने आया है, जो इनके कष्ट निवारण के लिये कर्मवश प्रयत्नशील हैं।

जिन राज्यों में जमीदारी प्रथा थी उन राज्यों में 'किसान सभा' नाम से संगठन बनाया गया। 'किसान सभा' के नाम से कार्य वर्तमान आन्ध्र प्रदेश के कुछ भागों में तथा बंगाल, बिहार, केरल तथा उत्तर-प्रदेश में प्रारम्भ हुआ है। कार्य प्रारम्भ वर्ष १९३० रहा है।

वर्ष १९३५ में प्रान्तीय स्वायत्तता कानून प्रचलित हुआ। उस समय अखिल भारतीय किसान सभा की स्थापना हुई। कांग्रेस के तथाकथित प्रगतिशील नेताओं ने इस कार्य में प्रारम्भ से नेतृत्व सम्भाला। स्वर्गीय जयप्रकाश जी का इस कार्य में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। जब वर्ष १९४० में कांग्रेस का नेतृत्व वर्ग जेल में था मौका पाकर खेतिहर मजदूर संगठनों का नेतृत्व कम्युनिष्ट पार्टी के लोगों ने किया।

वर्ष १९६७ में कम्युनिस्ट पार्टी के नेताओं को मतभेद हो गया। फलतः उनके दो भाग, जिसमें एक सी० पी० आई, दूसरा सी० पी०-एम० बना। परिणाम स्वरूप 'किसान सभा' का भी दो भागों में विभाजन हुआ। एक भाग का नेतृत्व सी० पी० ई० के लोगों ने दूसरे का नेतृत्व सी० पी० एम० के लोगों ने किया।

यदि विस्तृत रूप से विचार किया जाय तो भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का प्रत्यक्ष योगदान बहुत कम रहा है। किन्तु वर्तमान समय कांग्रेस के

नेतृत्व में काम करने वाली 'इण्टक कामगार संगठना' में इण्डियन नेशनल रूरल लेबर फेडरेशन नाम की स्वतन्त्र संगठन केवल भूमिहीन खेत मजदूरों के संगठन कुछ विशेष राज्यों में बनाया।

उपरोक्त मजदूर संगठनों का सदस्य कौन हो ? तथा संगठन कैसा हो ? इसपर समय समय पर चर्चा हुई है तथा यथावश्यक बदल भी हुआ है। १९३८ अथवा १९४० में इन सगठनों के सामने जमींदार एवं उनकी खेती पर काम करने वाले नौकर अथवा बटाई पर काम करने वाले मजदूर तक ही थे। इसलिये सदस्यता में भी ऐसे काम करने वाले मजदूरों का बाहुल्य था। वर्ष १९५० में इन परिस्थितियों में कुछ बदल आया। जमींदारी उन्मूलन के कानून बनने के कारण नौकरी करने वाले अथवा अधिया (बटाई) पर, काम करने वाले मजदूर मालिक बन गये अथवा जिन अमीर या सम्पन्न लोगों ने इन संगठनों के लिये उत्साह से काम किया था उनकी रुचि घट गई। रुचि घटने के साथ ही इन लोगों ने किसान सभा का त्याग भी किया। तत्पश्चात अधिया पर काम करने वाले मजदूरों की समस्याओ में धीरे धीरे वृद्धि हुई। वहाँ भी बाद में किसान संगठन स्थापित हुए। इसी कारण अनेक स्थानों पर मध्यवर्गीय किसानों का नेतृत्व आज भी वर्तमान है।

वर्ष १९६० में इन संगठनों की रचना में और अधिक बदल हुआ। स्वतन्त्रता के बाद यह प्रयास था कि मध्यवर्गीय किसान, छोटे किसान, बटाईदार एवं भूमिहीन किसानों पर एक संयुक्त संगठन हो। किन्तु १९६८ में सी० पी० एम० ने 'आल इण्डिया एग्रीकल्चर लेबर' यूनियन बनी, जो केवल भूमिहीन खेत मजदूरों का संगठन था। सी०पी०एम० ने खेतिहर मजदूरों का कोई अखिल भारतीय संगठन नहीं बनाया बल्कि उसने विभिन्न राज्यों में खेत मजदूर संगठनों का निर्माण अवश्य किया।

वर्ष १९७८ में प्रसिद्ध अर्थशास्त्री एवं मजदूर नेता श्री दत्तोपन्त ठेंगड़ी की प्रेरणा से अखिल भारतीय खेतिहर मजदूर महासंघ की स्थापना हुई।

विभिन्न मजदूर संगठनों की तथाकथित सदस्य संख्या निम्नलिखित हैं। सब लोगों को मिलकर कुल सदस्य संख्या ४०,२५००० है। यह संख्या भी अनुमान के आधार पर है, इसके लिये पर्याप्त आधार भी नहीं है।

अखिल भारतीय किसान सभा	सी० पी० आई० एम०	१०,१७०००
अखिल भारतीय किसान सभा-	सी० पी० आई० एम०	१०,०००००
एग्रीकल्चर लेबर यूनियन–	सी० पी० आई० एम०	१०,०००००
इण्डियन नेशनल रूरल लेबर फेडरेशन	–	८०००
अखिल भारतीय खेतिहर मजदूर महासंघ	–	७५०००
अन्य	–	५०,०००

इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भारत के ६ करोड़ ५० लाख ग्रामीण मजदूरों के ६% लोग विविध यूनियनों के सदस्य हैं।

किसी भी खेतिहर मजदूर संगठन का स्वरूप कार्य के अनुसार अखिल भारतीय नहीं है। बहुत से संगठनों का किसी विशेष प्रान्त या क्षेत्र तक ही सीमित है।

ग्रामीण मजदूर संगठनों का ध्येय तथा उनकी स्थापना में आनेवाली बाधायें

वर्ष १९७८ से ८३ तक पंचवर्षीय योजना में ग्रामीण मजदूर संगठनों की आवश्यकता पर जोर दिया गया। इस योजना के माध्यम से ग्रामीण संगठनों तक आर्थिक सहायता पहुंचे यह प्रमुख उद्देश्य था। इस योजना में भी इस बात का स्पष्ट उल्लेख है कि ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक खर्च किया जाय। इसका मुख्य कारण था कि निचले तपके को सामाजिक एवं आर्थिक न्याय मिल सके। ग्रामीण क्षेत्रों की जो वर्तमान रचना है उसमें बिना संगठन के सामाजिक न्याय मिलना सम्भव नहीं है : संगठन मजबूत होने पर ही ग्रामीण मजदूरों को न्याय मिल सके।

पंचवर्षीय योजना में व्यवस्था है कि ग्रामीण संगठन बनाया जाय। ग्रामीण संगठन बने इस निमित्त वातावरण बनाया जाय। वर्ष १९७७ में भारत सरकार ने यह बात स्वीकार किया कि आई० एल० ओ० ने १४१वें अनुच्छेद में निर्देश दिया है कि ग्रामीण संगठन बनाने की स्वतन्त्रता रहनी चाहिये इसका यह अर्थ नहीं कि सरकार स्वयं इन संगठनों को गांव गांव जाकर खड़ा करेगी या उसका संचालन करेगी। उद्देश्य मात्र इतना है कि ग्रामीण संगठन स्थापित हों तथा सुचारु रूप से चलें। वे ठीक से चलने के साथ ही स्वावलम्बी हों। इन सब कार्यों के लिये सरकार द्वारा योग्य अथवा अनुकूल परिस्थिति का निर्माण करना होगा।

संगठन के माध्यम से न्यूनतम वेतन कानून को योग्य एवं प्रभावी बनाने का प्रयत्न किया जावेगा। ऐसी योजनायें, जो ग्रामीणों के लिये हितकर हैं उन योजनाओं में ग्रामीणों को सहभागी बनाना चाहिये। इस प्रकार ग्रामीण मजदूरों के हित संवर्धन एव सर्व साधारण समाज का हित देखने का कार्य सहभागीदारी से सम्भव होगा।

ग्रामीण संगठनों का कार्य एवं ध्येय

ग्रामीण मजदूरों का सक्रिय संगठन (१) भू सुधार कार्य करना (२) 'कुल कायदा कानून' को योग्य रीति से क्रियान्वित करने तथा उसके अनुसार सीलिंग से ज्यादा भूमि का लेखा करना तथा भूमिहीन मजदूरों में उसे वितरित कराना। (३) ग्रामीण विकास योजना का कार्यक्रम क्रियान्वित कराना अर्थात् ग्रामीण ऋण वितरण का कार्य-खाद एवं खेतों के लिये उपकरण तथा माल की बिक्री व इससे सम्बन्धित योजनाओं को ग्रामीणों तक पहुंचाना। (४) ग्रामीणों के काम खेती उद्योग में तथा औद्योगिक विकास योजना व कुछ सार्व-जनिक काम जिनकी सहायता से रोजगारों की बहुलता बढ़ेगी—इस ओर अधिक ध्यान देना होगा। (५) आज तक के अनुभव के अनुसार योजना जिस यन्त्रणा द्वारा कार्यान्वित की जाती है, वह यंत्रणा सदोष होने से

के लिये जो वेतन निर्धारित किया गया है उसके पाने के लिये उन्हें बराबर संघर्ष करना पड़ता है। श्रम विभाग द्वारा नियुक्त इन्सपेक्टर के प्रयास के बावजूद कर्मचारियों को निर्धारित वेतन नहीं मिल सका है। इसका स्पष्ट कारण यह है कि बड़े किसानों की सत्तापक्ष से साठगांठ है। ऐसे मालिकों के विरुद्ध कानूनी कार्यवाही करने पर सत्तापक्ष के नेता इनको संरक्षण देने के लिये आगे आते हैं। कानून होते हुए भी कानून का समुचित प्रतिपालन सम्भव नहीं हो सका है। इसलिये इसके लिये निम्नांकित उपाय किये जांय :—

(१) खेतिहर मजदूरों को न्याय मिल सके इसके लिए मालिक, मजदूर व सरकार तीनों पक्षों की सम्मिलित समिति बनाई जाय।

(२) निर्धारित वेतन की जानकारी मजदूरों को देने के लिये व्यापक प्रचार व्यवस्था की जाय।

(३) मालिक मजदूरों को निर्धारित वेतन दे सकें—इसके लिए पृथक सक्षम यंत्रणा का सृजन किया जाय साथ ही जो भी यंत्रणा बनाई जाय उसमें कर्मचारियों या कर्मचारी संगठनों के प्रतिनिधि अवश्य सम्मिलित किये जायें।

(४) खेतिहर मजदूरों की समस्याओं के तुरन्त निराकरण हेतु अलग से खेतिहर मजदूर आयुक्तों की नियुक्ति की जाय तथा इन निरीह मजदूरों को तुरत न्याय देने के लिये पृथक न्यायालय की व्यवस्था की जायें।

(५) दैववाद तथा परम्परागत बन्धन से खेतिहर मजदूरों को मुक्त करके उनमें वैचारिक पृष्ठभूमि तैयार करके जागृति लायी जाय तथा उन्हें सभी प्रकार से आत्मनिर्भर किया जाय।

(६) खेतिहर मजदूरों की समस्याओं के निराकरण का एक मात्र उपाय सशक्त संगठन है। इसलिए उनमें सबल तथा प्रभावी संगठन बनाने की क्षमता उत्पन्न की जाय।

संकल्पित खेतिहर मजदूर संगठन

खेत पर काम करने वाले दैनिक मजदूरों में खेतिहर मजदूरों की संख्या अधिक है। इन मजदूरों में भी पिछड़ी जाति के लोग तथा बनवासी अधिक हैं। स्वतन्त्रता के बाद पददलित तथा आर्थिक दृष्टि से पिछड़े वर्ग की घोर उपेक्षा की गई है।

प्रसन्नता की बात है कि केन्द्रीय शासन का ध्यान इस समस्या की ओर गया है किन्तु शासन ने मात्र इतना ही किया है कि इन भीषण एवं जटिल समस्याओं के परीक्षण एवं अध्ययन हेतु समितियों का गठन किया है। ग्रामीण कामगार और विशेषत: खेतिहर मजदूरों की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति का अध्ययन करने हेतु वर्ष १९५०-५१, १९५६-५७, १९६३-६४ और अन्त में १९७४-७५ में समितियों का गठन किया गया है। परिणाम स्वरूप प्राथमिक तथा मूलभूत जानकारी एकत्रित की गई है। उस जानकारी पर प्रशासकीय तथा कानूनी उपाय योजना मन्द गति से चल रही है। वर्ष १९४८ के न्यूनतम वेतन कानून की श्रेणी में खेतिहर मजदूरो के चन्दे की भी खोज कीन हुई थी किन्तु १९७५ तक सभी राज्यों में यह कानून प्रयोग में नहीं आया है। पांच राज्यों में अमल में लाने के बाद इसका पुनर्निर्धारण हुआ है।

इन सब प्रयोगों का निष्कर्ष यह निकला है कि बेकारी अर्ध बेकारी, कम वेतन तथा आवश्यक सहायता एवं सुधार का अभाव तथा तज्जन्य गरीबी खेतिहर मजदूरों के लिये ज्वलन्त समस्या बनी है। इस दुःखद स्थिति का मूल कारण संगठन का अभाव है। मजदूरों को संकट से उबारने के लिये केन्द्रीय खेतिहर मजदूर कानून बनना आवश्यक है। इस प्रकार का विचार अनेक वर्षों से केन्द्र शासन के सम्मुख विचाराधीन है।

खेतिहर मजदूरों पर न्यूनतम वेतन कानून लागू किया जाय– ऐसा अधिकार केन्द्रीय सरकार ने राज्य सरकारों को भी दिया। बर्ष १९६९ तक इस कानून की क्या दशा थी इस सम्बन्ध में नेशनल लेबर कमीशन ने कहा है कि– अर्थात् वर्षों तक एक भी प्रान्त में इस कानून का प्रसार अथवा क्रियान्वयन नहीं किया गया। इसके बाद इस कानून की स्थिति १९७४–७५ में यह थी कि सैकड़े में दो व्यक्तियों को इस कानून की जानकारी थी। इतना ही नहीं तो प्रति सौ पर १ व्यक्ति खेतिहर मजदूर संगठन के सदस्य थे।

औद्योगिक मजदूरों की भाँति इन असंगठित मजदूरों के लिये भी कानूनी आधार की आवश्यकता थी। चाहे जितने दोष इस कानून के अन्तर्गत हों किन्तु मजदूरों को इस कानून की आवश्यकता दिखाई देती है। नेशनल लेबर कमीशन की यही राय थी कि खेतिहर मजदूरों के लिये वेतन कानून अवश्य बनें किन्तु ऐसे कानूनों की संख्या कम से कम होनी चाहिये। किन्तु कमीशन की इच्छा की पूर्ति वर्ष १९८० तक भी नहीं हो सकी है।

वर्तमान समय देश के सभी राज्यों में खेतिहर मजदूरों के लिये न्यूनतम वेतन कानून बना है। केरल और पंजाब में यह प्रभावी ढंग से लागू है। किन्तु केरल को छोड़कर दक्षिण के अन्य राज्यों में इसका प्रसार बहुत कम है। जीवनावश्यक वस्तुओं के भाव नित्य बढ़ते रहने के कारण खेतिहर मजदूरों के वेतन का पुनरीक्षण आवश्यक है। खेद है इसके लिए अभी तक कोई समिति नहीं बनी है। और यदि किसी राज्य में समिति का गठन भी हुआ है तो उसकी अनुशंसायें भी वर्षों प्रकाशित नहीं होती हैं। और यदि प्रकाशित भी हुई तो तब तक बाजार भाव में पर्याप्त अन्तर आ जाता है। इस कारण समिति की रिपोर्ट तथ्यहीन तथा अर्थहीन हो जाती है।

वे स्थान जहां खेतिहर मजदूरों के लिए न्यूनतम वेतन समितियो का गठन हुआ है निम्नांकित हैं :–

राज्य	स्थापना	अनुशंसायें प्रकाशित
गुजरात	११ अगस्त १९६४	१० दिसम्बर १९६७
मध्य प्रदेश	२५ नवम्बर १९६९	१ अगस्त १९७४
महाराष्ट्र	२० नवम्बर ७१	३० अगस्त १९७४

वर्ष १९६९ के बाद आजतक मात्र १० राज्यों में खेतिहर मजदूरों के लिये न्यूनतम वेतन का निर्धारण किया गया है। वेतन का समय समय पर पुनरीक्षण न होने से खेतिहर मजदूरों को उसका समुचित लाभ नहीं मिल सका है।

खेतिहर मजदूरों को जो वेतन मिलता है वह इतना कम है कि उससे उनको दो समय की रोटी भी नहीं मिल सकती है। खेतिहर मजदूरों के बारे में 'इण्डियन लेबर जर्नल' के मई १९८० के अंक में एक लेख प्रकाशित हुआ था, जिसमें न्यूनतम वेतन और जीवन वेतन का अन्तर स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

सम्पूर्ण निष्कर्ष यह है कि पंजाब प्रदेश को छोड़कर शेष सभी राज्यों में खेतिहर मजदूरों के लिये जो वेतन निर्धारित किया गया है वह अपर्याप्त है। वर्ष १९६४-६५ के मध्य भूमिहीन पुरुष मजदूरों को वर्ष में २७२ दिन काम मिलता था। किन्तु यह काम के दिन वर्ष १९७४-७५ में घटकर मात्र २४६ दिन ही रह गये। ठीक इसी प्रकार महिला कामगारों को वर्ष में काम के दिन मात्र १७९ ही थे। ऐसे मजदूरों को वर्ष में काम मिलने वाले दिनों की संख्या में ह्रास पंजाब में अधिक हुआ है। पूरे देश का लेखा लेने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि किसी भी राज्य का खेतिहर मजदूर गरीबी रेखा से ऊपर नहीं उठ पाया है। जीवन वेतन की बात तो दिवा स्वप्न के समान है।

खेद है! खेतिहर मजदूरों के लिये राज्य सरकारों द्वारा घोषित वेतन भी उन्हें नहीं मिलता है। निजी खेतों पर काम करने वाले मजदूरों की दशा और भी दयनीय है। शासकीय एवं विद्यापीठ तथा कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन वाराणसी के खेतों पर काम करने वाले मजदूरों

जिन गरीबों के लिये होती है उनतक पहुंचती नहीं हैं। यह भी देखते रहने की जिम्मेवारी खेतिहर मजदूरों की ही है। इस विषय में कर्नाटक की ग्रामीण दुग्ध व्यवसाय योजना का, जो परीक्षण हुआ है- ध्यान देने योग्य है। इसमें देहात में साधारणतः बड़े किसान, छोटे किसान एवं भूमिहीन ऐसे तीन श्रेणी के लोग हैं। बड़े किसानों के पास उपजाऊ खेती का सबसे बड़ा भाग रहता है। इसी प्रकार देहात में विभिन्न जातियों में श्रेष्ठ जाति के पास अधिक जमीन रहती है। कुल व्यवसाय मुख्यत. खेती पर निर्भर है। खेती का बटवारा असमान है। इसी कारण दुग्ध व्यवसाय भी असमान है।

जितनी खेती जिसके पास होगी उतनी ही मात्रा में दुग्ध योजना भी उन्हीं लोगों के पास होगी। अर्थात छोटे किसान तथा निम्न जाति के पास खेती एवं डेरी उद्योग का लाभ बहुत कम मात्रा में मिलता है। इसका स्पष्ट अर्थ यह होता है कि जब तक आय का समान वितरण नहीं होता है तब तक पंचवर्षीय योजनायें भी ग्रामीण विकास योजना का लाभ भी गरीबों तक नहीं पहुंच सकता है। अतः आय साधनों का समान वितरण करना, अधिक जमीन का गरीबों एवं भूमिहीन में समान बितरण करना यह दोनों बातें गरीबों को राहत दिलाने का एकमात्र साधन हैं।

ग्रामीण खेतिहर मजदूर संगठनों का मुख्य कर्तव्य हो गया है कि वे ग्रामीणों की समस्याओं की ओर विशेष ध्यान दें तथा उसके निराकरण हेतु हर सम्भव प्रयास करें (६) जिन समितियों का सम्बन्ध खेतिहर मजदूरों से है उनमें प्रतिनिधित्व पाना भी खेतिहर मजदूर संगठनों की जिम्मेवारी है।

(७) खेतिहर मजदूरों को प्रशिक्षित करने के लिये समय समय पर शिक्षा वर्ग का आयोजन करना भी खेतिहर मजदूर संगठनों का ही कार्य है।

(८) खेतिहर मजदूरों का वेतन तथा उनके रहन सहन का दर्जा ऊँचा हो इस ओर भी इन संगठनों को ध्यान देना होगा।

(९) रोजगार के लिये, जो उपाय सरकार करती है उस ओर भी ध्यान देना होगा तथा रोजगार परक योजनाओं में खेतिहर मजदूरों को सहभागी बनाने की जिम्मेवारी भी इन संगठनों की है।

(१०) किसान-मजदूर सम्बन्धी साहित्य का प्रसार करने का दायित्व भी इन्हीं संगठनों को लेना होगा।

(११) खेतिहर मजदूरों को मकान उपलब्ध हों, उनके स्वास्थ्य ठीक रहें इस ओर भी खेतिहर मजदूर संगठनों को ध्यान देना होगा। अर्थात् सभी प्रकार के कल्याणकारी सामाजिक कार्यों को भी उन्हें करना होगा।

खेतिहर मजदूरों का वेतन निर्धारण

भारत में खेतिहर मजदूरों की संख्या अधिक है। यह संख्या प्रतिवर्ष निरंतर बढ़ रही है। ३१ मार्च १९७८ को भारत में यह संख्या ११२.४३ दसलक्ष थी। भारत में कुल श्रमिकों की संख्या का २६ प्रतिशत खेतिहर मजदूर हैं। इतनी बड़ी संख्या में रहने वाले लोगों की समस्यायें देश के आर्थिक विकास को प्रभावित करती हैं। इनकी समस्याओं का हल ही देश की आर्थिक समस्याओं का उचित हल है। भारत में ४० प्रतिशत लोग अपना जीवन यापन गरीबी रेखा से नीचे कर रहे हैं। बहुताँश गरीब ग्रामों में बसते हैं जिनमें खेतिहर मजदूरों की संख्या अधिक है। भारत की आजादी के ३२ वर्ष बाद भी इस ओर ध्यान नहीं दिया गया है। इनके उत्थान के लिये कोरे नारे अवश्य लगते हैं। इस पिछड़े वर्ग की आय बढ़ाने के जो उपाय सोचे गये थे, वे तो अभी तक कल्पना में ही हैं। प्रत्यक्ष रूप में वे व्यवहार में नहीं लाये गये हैं। न्यूनतम वेतन कानून और उसका क्रियान्वयन कोरी कल्पना मात्र है।

संकल्पित कानून की पार्श्व भूमि

मई १९७५ में खेतिहर मजदूरों की स्थायी समिति की दूसरी सभा में खेतिहर मजदूरों के लिये केन्द्रीय कानून की आवश्यकता पर बल दिया गया किन्तु आपात काल में इस समस्या को बिल्कुल ही दुर्लक्ष्य किया गया। १९७७ की सत्ता परिवर्तन के बाद खेतिहर मजदूरों की समस्याओं पर विचारार्थ एक विशेष परिषद आयोजित करने का निश्चय हुआ है। १९ जनवरी, ७८ को सम्पन्न परिषद में समस्याओं के निराकरण हेतु एक यंत्रणा तैयार की गई है। जनवरी १९७९ में स्थायी समिति की पहली बैठक में खेतिहर मजदूरों से सम्बन्धित सर्व स्पर्शी मध्यवर्ती कानून का प्रारूप तैयार करने के लिए एक उप समिति बनाई गई, जिसने विषय सूची ९ जुलाई १९८० को प्रस्तुत किया। काफी विचार विमर्श के बाद दूसरी बैठक में प्रस्तावित बैठक को मान्यता मिली। जब यह विषय सदन पटल पर 'विधेयक' के रूप में आया तो नियोजन गृह आदि प्रक्रियाओं से गुजरने के बाद उसको कानून का रूप प्रदान किया गया। विगत बत्तीस वर्षों तक इस दलित मजदूर के लिये आंसू बहाना तथा इनकी हालत सुधारने के लिये अनेक प्रकार की घोषणायें करने का काम होता रहा है। खेतिहर मजदूरों के लिये बने संकलित कानून में आठ प्रकरण तथा ४१ अनुच्छेद हैं। जिसमें (१) परिभाषा (२) न्यायाधिकरण (३ सेवा की गारन्टी (४) न्यूनतम वेतन कानून का प्रतिपालन (५) अधिकारी (६) कल्याणकारी योजनायें एव (७) कानून का उल्लंघन करने वाले को समुचित दण्ड देने की प्रक्रिया तथा (८) रोजाना काम मिलने की गारण्टी आदि आठ बातें सम्मिलित की गयी हैं।

उपरोक्त कानून की मुख्य विशेषतायें :—

(१) यह कानून मध्यवर्ती तथा केन्द्रीय कानून के नाम से जाना जावेगा। तथा सभी प्रान्तों में लागू होगा। (२) इस कानून द्वारा खेती तथा खेतिहर मजदूरों की परिभाषा भी विस्तृत की गई है। इस

नयी परिभाषा में बाग, पशु पालन, मधुमक्खी पालन, कुक्कट पालन, जंगलों में लकड़ी कटाई, चराई के जंगल आदि क्षेत्र में काम करने वाले मजदूर सम्मिलित किये गये हैं। (३) यदि एक वर्ष किसी मजदूर ने काम किया है तो दूसरे वर्ष भी काम मिलना चाहिये। यदि दूसरे वर्ष मजदूर काम करने से मना कर दें तभी नयी नियुक्ति हो सकती है। इस प्रकार मर्यादित क्षेत्र में नौकरी की गारण्टी भी इस नये कानून में मिलेगी। (४) कल्याणकारी निधि योजना भी सम्मिलित है, जो मालिक मजदूर और प्रान्तीय सरकार की देखरेख में होगी। (५) बेकारी की समस्या हल करने तथा मजदूरों को वर्ष भर काम दिये जाने की व्यवस्था के लिये रोजगार समिति की स्थापना होगी। (६) न्यूनतम वेतन योजना कानून का प्रतिपालन हो रहा है कि नहीं इसके लिये देहात में पृथक न्यायालय की स्थापना होगी। इससे सुदूर गांवों में मजदूरों की समस्या का निराकरण होगा। सुदूर देहात में उठे मजदूरों के विवादों का अति शीघ्र निपटारा हो सकेगा। (७) भारतीय खेतिहर मजदूर महासंघ की प्रतिनिधि सभा ने स्थायी समिति ओर उप समिति के सम्मुख खेतिहर मजदूरों को बोनस दिये जाने की मांग की है। (८) नये तथा आधुनिक तंत्र विज्ञान के उपभोग से जहां हरित क्रांति हुई है वहीं कीट-नाशक दवाइयों के उपयोग से मजदूरों के स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ा है। ट्रेक्टर आदि से मजदूर जखमी होते हैं। इससे बचने के उपाय का भी उल्लेख है। (९) कारखाना मजदूरों की भांति खेत मजदूरों के लिये भी क्षतिपूर्ति व्यवस्था हो—इसलिये वर्कमेन्स कम्पेनसेशन ऐक्ट में सुधार की सिफारिश की गई है। उपरोक्त सुझाव अन्य सुधारों सहित कानून शीघ्र ही बनेगा। स्थायी समिति ने शासन एवं केन्द्रीय श्रम मंत्री का ध्यान इस ओर आकर्षित किया था किन्तु कानून बन जाने से ही मजदूरों की समस्या का समाधान नहीं होगा। खेतिहर मजदूरों के प्रबल संगठन से ही समस्या का सही समाधान होगा। इसलिये सामाजिक संगठनों द्वारा इस दिशा में भी सक्रिय प्रयास जरूरी है।

समस्याओं का निराकरण

खेतिहर मजदूरों की वर्तमान स्थिति, उनके संगठन, तथा उनकी दशा में सुधार हेतु शासकीय प्रयत्न एवं खेतिहर मजदूर नियम आदि का विस्तृत विवेचन किया गया है। इससे यह बात स्पष्ट हो गई है कि खेतिहर मजदूरों का प्रबल शत्रु उनकी गरीबी है। निस्सन्देह यह एक ज्वलंत समस्या है। प्रथम पंचवर्षीय योजना से छठीं पंचवर्षीय योजना तक बराबर गरीबी पर विचार किया गया है और अब भी हो रहा है। छठी पंचवर्षीय योजना में गरीबी को समूल नष्ट करने के स्थान पर क्रमशः घटाने का लक्ष रखा गया है। यह समस्या गत ३० वर्षों में हल होने को कौन कहे और जटिल हो गई है।

गरीबी का मूल कारण बेरोजगारी एवं अर्ध बेरोजगारी है। अतः गरीबी नष्ट करने का एक मात्र उपाय है रोजगार व्यवस्था करना। इसके अतिरिक्त श्रम प्रधान योजनाओं का नियोजन होना चाहिए। छोटे छोटे बाँध, नाला-बांध, तालाब निर्माण एव सिचाई योजना आदि के माध्यम से रोजगार दिये जाने की व्यवस्था की जा सकती है। इसलिये प्रदेशसः तथा विभागसः योजना बनाते समय खेतिहर मजदूरों की साझेदारी रखी जाय। इन योजनाओं में खेतिहर मजदूरों को सम्मिलित करने का अर्थ है कि उनको सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से सबके बराबर लाना, किन्तु उनकी निर्धनता एवं बेरोजगारी के कारण यह बात अभी तक सम्भव नहीं हो सकी है। इसके बदल के लिये निम्नांकित उपाय सम्भव हैं :—

(१) भू सुधार कानून का कड़ाई से क्रियान्वयन।

(२) अतिरिक्त जमीन का शीघ्रातिशीघ्र भूमिहीनों में बंटवारा।

(३) मजदूरों और श्रमिकों की योजनाओं के अन्तर्गत खेतिहर मजदूरों और श्रमिकों की साझेदारी।

(४) श्रमिकोन्मुख योजनायें।

उपरोक्त उपायों के साथ ही खेतिहर मजदूरों में प्रबल सुधार इच्छा शक्ति की जागृति की जाय तथा आत्म विश्वास जगाया जाय। बिना उनकी मन: स्थिति ठीक किये उनको संगठित करना कठिन है। देवी देवताओं के चक्कर तथा भाग्य भरोसे बैठे रहने की प्रवृत्ति से भी उन्हें छुटकारा दिलाया जाय, जिसके लिए उन्हें शिक्षित करना पड़ेगा। उन्हें अपने पैरों पर उन्हें खड़ा करने के लिये 'अपनी मदद आप करो' का गुरुमंत्र सिखाना पड़ेगा। तभी समस्या का सही निराकरण हो सकेगा।

—o—

❋ सामूहिक-गान ❋

दलित जनों का भाग्य बनाने वाले हम...

मानवता के लिये उषा की किरण जगाने वाले हम ।
शोषित, पीड़ित, दलित जनों का, भाग्य बनाने वाले हम ।।

हम अपने श्रम-सीकर से ऊपर में स्वर्ण उगा देंगे,
कंकर पत्थर समतल कर, कांटों में फूल खिला देंगे ।
सतत परिश्रम से अपने, हैं वैभव लाने वाले हम,
शोषित, पीड़ित, दलित जनों का, भाग्य बनाने वाले हम ।।

अन्य किसी के मुंह की रोटी, हरना अपना काम नहीं,
पर अपने अधिकार गवां कर, कर सकते आराम नहीं ।
अपने हित औरों के हित का, मेल मिलाने वाले हम,
शोषित, पीड़ित, दलित जनों का, भाग्य बनाने वाले हम ।।

रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा आवश्यकता जीवन की,
व्यक्ति और परिवार सुखी हों, तभी मुक्ति होती सच्ची ।
हंसते-हंसते राष्ट्र-कार्य में शक्ति लगाने वाले हम,
शोषित, पीड़ित, दलित जनों का, भाग्य बनाने वाले हम ।।

भारत माता का मुख गौरव, प्राणों से भी प्यारा है,
युग-युग से मानव-हित करना, शाश्वत धर्म हमारा है ।
जीवन-शक्ति उसी माता की भेंट चढ़ाने वाले हम,
शोषित, पीड़ित, दलित जनों का, भाग्य बनाने वाले हम ।।